श्री कृष्ण प्रणामी धर्म पत्रिका

वर्ष : ९३

अप्रैल २०२१

अंक : ४

१

श्री ५ नवतनपुरी धाम, जामनगर

www.krishnapranami.org

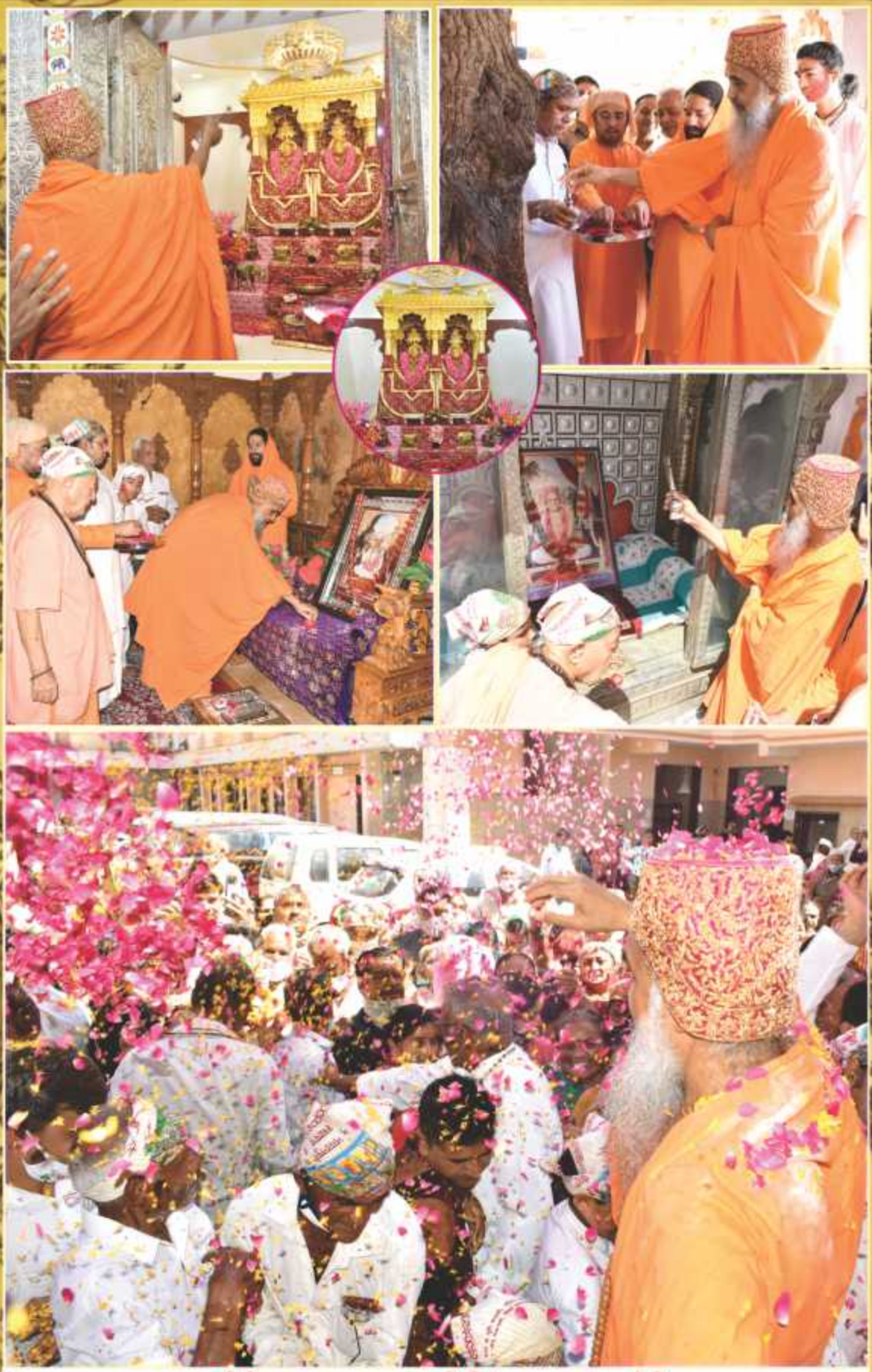

प. पू . महाराजश्रीके साथ फाग (धुलेटी)का आनंद लेतेहुए सुन्दरसाथ

श्रीकृष्ण प्रणामी धर्म पत्रिका

संस्थापक : ब्रह्मलीन आचार्य श्री १०८ धनीदासजी महाराज

वि . सं : २०७८ | निजानन्दाब्द : ४३८ | बुद्धजी शाका : ३४३

वर्ष : ९३ | **अप्रैल २०२१** | **अंक : ०४**

मुद्रक, प्रकाशक एवं स्वामित्व } जगद्गुरु आचार्य श्री १०८ कृष्णमणिजी महाराज

मुद्रण एवं प्रकाशन स्थल } श्री ५ नवतनपुरी धाम खीजड़ा मन्दिर जामनगर – ३६१ ००१ (गुजरात) भारत

सम्पादक : स्वामी श्री लक्ष्मणदेवजी महाराज
श्री कनकराय व्यास

पता : श्री कृष्ण प्रणामी धर्म पत्रिका, श्री ५ नवतनपुरी धाम, जामनगर 361 001

फोन : (0288) 267 2829 मो : 08511226600

E-mail : patrika@krishnapranami.org / navtanpuri@gmail.com

Website : www.krishnapranami.org / patrika

नूतन वर्षकी शुभकामनाएँ

वैशाखीके पावन अवसर पर समस्त सुन्दरसाथको बधाई देते हुए हमें अपार हर्षका अनुभव हो रहा है कि भारतीय पञ्चाङ्गके अनुसार नव वर्ष २०७८ आरम्भ हो गया है । सभी देशवासियोंके लिए यह वर्ष सुख, शान्ति एवं समृद्धिदायी बने ऐसी शुभकामना करते हैं । यह पवित्र दिन भारत वर्षका नववर्षका प्रथम दिन है । यद्यपि आज इसका प्रचलन कम है किन्तु इसका महत्त्व अपने स्थान पर पूर्ण गरिमाके साथ है ।

इस पावन अवसर पर पूर्णब्रह्म परमात्माकी असीम अनुकम्पा सभीको प्राप्त हो ऐसी शुभकामना ।

ज्यारे धणी धणवट करे, त्यारे बल वेरीनां हरे ।
वली गया काम सराडे चढे, मन चितव्यां कारज सरे ॥

– आचार्य श्री १०८ कृष्णमणिजी महाराज

बेहद वाणी

अनन्तश्री विभूषित जगद्गरु आचार्य श्री कृष्णमणिजी महाराज

हदका सामान्य अर्थ होता है सीमा। जो हदसे परे होता है उसे बेहद कहते हैं। इस प्रकार जो कालकी सीमामें आबद्ध नहीं है, विनाशशील नहीं है उसे बेहद कहा जाता है। हद और बेहदको दूसरे शब्दोंमें क्षर और अक्षर भी कहा जाता है। यहाँ पर क्षरका अर्थ है क्षरणशील अर्थात् शनैः शनैः क्षय होनेवाला, शनैः शनैः परिवर्तन होनेवाला। जो कालकी सीमामें आबद्ध होगा वह क्षयशील और क्षरणशील होगा। जो क्षरणशील नहीं होगा वह अक्षर अर्थात् अपरिवर्तनशील, अविनाशी, अखण्ड कहलाएगा। इस प्रकार क्षर अथवा हद परिवर्तनशील है और अक्षर अथवा बेहद अपरिवर्तनशील शाश्वत है। यह दृश्यमान जगत परिवर्तनशील है। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही परिवर्तनशील है। ब्रह्माण्डके अन्तर्गत चौदह लोक, अष्ट आवरण, ज्योतिस्वरूप, गायत्री, शून्य, निराकार, महाशून्य आदि आ जाते हैं। इस पूरे ब्रह्माण्डको हद या क्षर कहा गया है जो निरन्तर परिवर्तनशील है और महाप्रलयमें पूर्णरूपसे नाशको प्राप्त होता है। शून्यमण्डलमें ऐसे अनन्त ब्रह्माण्ड हैं जो अक्षरब्रह्मके नेत्र भ्रमण मात्रमें उत्पन्न होते हैं, थोडे क्षण टिकते हैं और फिर लयको प्राप्त हो जाते हैं। इन सभी ब्रह्माण्डोंको क्षर अथवा हद कहा गया है। इन हद ब्रह्माण्डोंके अन्तर्गतका ज्ञान हदका ज्ञान है और ऐसे हदका ज्ञान देनेवाली वाणी हदकी वाणी होती है। इससे भिन्न परिवर्तनशील ब्रह्माण्ड़से आगे अपरिवर्तनशील अथवा अविनाशी भूमिकाका ज्ञान समझानेवाली वाणी बेहदवाणी कहलाती है।

शास्त्रोंमें दो प्रकारकी विद्याका प्रतिपादन हुआ है। उनमें एक विद्या है अपरा और दूसरी विद्या है परा। क्षर जगतकी विद्या अपरा विद्या है और क्षर जगतसे परेकी विद्या परा विद्या है। वास्तवमें क्षर जगतके ज्ञानको विद्या नहीं अपितु अविद्या कहा जाता है तथापि क्षर जगतका ज्ञान भी विशाल होनेसे उसे भी विद्या नाम देते हुए अपरा विद्या अथवा अपरा ज्ञान कहा है।

उससे आगे अविनाशी भूमिकाका ज्ञान है पराविद्या अथवा परा ज्ञान । इसी परा विद्याको महामतिने बेहदवाणी कहा है। अविनाशी भूमिका एवं अविनाशी भूमिकामें होनेवाली लीलाओंका प्रतिपादन अथवा अभिव्यक्ति करनेवाली वाणीको बेहदवाणी कहा गया है ।

यथार्थतः शास्त्रोंने निर्देश दिया है, **सा विद्या यद् अक्षरमधिगम्यते** । विद्या वह है जिससे अविनाशी धाम, लीला अथवा ब्रह्मको समझा जा सकता है। नश्वर जगतमें रहते हुए अविनाशीका ज्ञान होना कठिन होता है। मायाका विस्तार भी बड़ा है । इसलिए मायाको समझानेवाली विद्या अपरा और मायासे आगेका ज्ञान देनेवाली विद्याको पराविद्या कहा है। अविनाशी भूमिका तो और भी अधिक विस्तृत है । उसका पार पाया नहीं जा सकता । इससे भी आगे पूर्णब्रह्म परमात्मा और उनके धामका ज्ञान करवानेवाली विद्याको ब्रह्मविद्या कहा गया है ।

इस प्रकार अपरा विद्या, पराविद्य और ब्रह्मविद्या इन तीन प्रकारसे विद्याका उपदेश दिया गया है ।

महामतिने पराविद्याको बेहदवाणी कहा है । इस जगतमें बेहदके ज्ञानका प्रचलन नहीं था । ब्रह्म ज्ञानकी बात तो दूर रही । थोड़ेसे गिने चुने लोग ब्रह्मज्ञानके विषयमें रुचि रखते थे । इसलिए शास्त्रोंमें भी ब्रह्मज्ञान संकेतमात्रमें है। पराज्ञानका भी अल्पमात्र विवरण प्राप्त होता है। महामतिने इस प्रकरणके द्वारा पराज्ञान अथवा पराविद्याका प्रतिपादन किया है और अन्तमें ब्रह्मविद्याका संकेत किया है। वह इस प्रकार है,

हद पार बेहद है, बेहद पार अक्षर ।
अक्षर पार वतन है, जागिए इन घर ॥

(प्रकाश हि. ३१/१६५)

ब्रह्मविद्यासे आत्मामें जागृति आ जाती है जिससे मायामें रहते हुए भी मायासे परे परमात्माके धाम, लीला, स्वरूप आदिका ज्ञान हो जाता है । महामतिने तारतम ज्ञानको ब्रह्मज्ञान अथवा ब्रह्मविद्या कहा है । इसके द्वारा आत्मामें जागृति आ जाती है और ब्रह्मधाम एवं पूर्णब्रह्मका ज्ञान प्राप्त होता

है। अपरा, परा और ब्रह्मविद्याकी यथार्थ समझ ही तारतम ज्ञानसे प्राप्त होती है। बेहदवाणी प्रकरणके आरंभमें प्रथम चौपाईके द्वारा महामतिने पराज्ञानके अधिकारीकी चर्चा की है। यथा,

बेहद के साथी सुनो, बोली बेहद वाणी ।
बडे बडे रे हो गए, पर काहु न जानी ॥

(प्रकाश हि. ३१/१)

नश्वर जगतका खेल देखनेके उद्देश्यसे अविनाशी धामसे आई हुई आत्माएँ ही पराज्ञान अर्थात् बेहदवाणीको समझ सकती हैं। अन्यथा जगतके खेलमें खेलनेवाले जीवोंने कितनी भी साधना क्यों न की हो उन्हें यह ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है। ऐसे उच्चकोटिके जीवोंके लिए पारका द्वार खोलदेनेका कार्य ब्रह्मात्माओंने किया है। वे जीव ब्रह्मात्माओंके सम्पर्कमें रह कर पूर्णब्रह्म परमात्माकी भक्ति करेंगे तो उन्हें भी अविनाशी धाममें अखण्ड मुक्ति प्राप्त होगी। यद्यपि वे पूर्णब्रह्म परमात्माको ब्रह्मात्माओंकी भाँति यथार्थ रूपमें नहीं पहचानेंगे तथापि उनकी भक्ति करनेपर अखण्ड मुक्ति प्राप्त कर पायेंगे। ब्रह्मात्माओंके आगमनसे उनके लिए भी अखण्ड भूमिकाके द्वार खुले हैं। इसीलिए कहा है,

मुक्ति देसी ब्रह्माण्ड को, आए ब्रह्म आतमा सत ।

बेहदवाणीके अधिकारीका उल्लेख कर इसका महत्त्व समझाते हुए भगवान विष्णु और महादेवजीका उदाहरण दिया। महादेवजीने भगवान विष्णुसे बेहदभूमिकी बात पूछी तब भगवान विष्णुने कहा, सृष्टिकी आदिसे लेकर विचार करेंगे तो ज्ञात होगा कि ऐसे करोडों ब्रह्माण्ड बनकर मिट भी गए हैं किन्तु आज तक किसीने भी परा विद्या अर्थात् बेहदवाणीका यथार्थ निरूपण नहीं किया,

ए बात तो शिवजी जाहेर, इत है कै भांत ।
ठौर ठौर कहे वचन, ए जो भेद कल्पान्त ॥
शुकजी और सनकादिक, कै और भी साध ।
तिन खोज खोज यों कह्या, ए तो अगम अगाध ॥

(प्रकाश हि. ३१/७,८)

अन्य ब्रह्माण्डोंके विषयमें उत्पन्न हुई महादेवजीकी जिज्ञासाको शान्त करते हुए भगवान विष्णुने कहा, शास्त्रोंमें अनेक ब्रह्माण्डोंकी चर्चा हुई है किन्तु कल्प भेदके कारण शास्त्रोंकी वर्णन शैलीमें उल्लेख किए गए संकेतोंका यथार्थ स्पष्टीकरण न होनेसे यह रहस्य रहस्य ही बना रहा । शुकदेवजी, सनकादि जैसे अनेक महापुरुषोंने अविनाशी भूमिका या वहाँकी लीलाके विषयमें जानने एवं समझनेका प्रयत्न किया किन्तु उन्हें भी सफलता नहीं मिली । अनेक साधकोंने खोज की तथापि यह रहस्य अगम्य रहा । लक्ष्मीजी भी भगवान विष्णुको पूछती हैं, आप किसका ध्यान करते हैं ? इसे जाननेके लिए उन्होंने सात कल्प पर्यन्त कठोर तपस्या की तथापि वे यह न जान सकी । भगवान विष्णुने उन्हें श्री कृष्णावतारके समय श्री कृष्ण रूक्मिणी विवाहके अवसर पर व्रजलीला श्रवण करते हुए मूर्च्छित होकर अभिनयके द्वारा समझाया कि वे श्री कृष्णजीकी व्रजलीलाका ध्यान करते हैं । नश्वर जगतमें सम्पन्न हुई व्रज एवं रास लीलाको अक्षर ब्रह्मने अपने अन्तःकरणमें अंकित कर अखण्ड किया । इस प्रकारकी लीला अखण्ड गोलोक धाममें निरन्तर होती रहती है । भगवान विष्णु उसी लीलाका ध्यान करते हैं । किन्तु वे लक्ष्मीजीको यह रहस्य नहीं समझा सके। वे ध्यानावस्थामें अखण्ड लीलाका रस आस्वादन करते थे किन्तु उसे व्यक्त नही कर पाते थे । सम्भव है कि ज्ञानके आदान प्रदानके लिए अथवा किसी विशेष रहस्यको समझानेके लिए उपयुक्त भूमि कर्मभूमि या यह मृत्युलोक हो । स्वर्ग वैकुण्ठ आदि लोक भोगभूमि कहे गए हैं ऐसी अखण्ड लीलाके रसका आस्वादन व्रजकी गोपियोंनें सहजतासे ही किया । यथा,

सो रस व्रज की सुन्दरी, पायो सुगम ।
सो सेहेजे घर आइयां, जो कहे वेद अगम ॥

(प्रकाशि हि. ३१/११)

व्रजकी गोपियोंने जो रस प्राप्त किया है वह तो परमधामका है । उन्होंने पूर्णब्रह्मके साथ अखण्ड लीला विहार किया जिनके लिए वेदोंने अगम, अगोचर कहा है । ऐसे पूर्णब्रह्म परमात्माकी लीला जो नश्वर जगतमें होते हुए भी अखण्ड हुई है और ब्राह्मीलीला कहलाती है उसे जाननेके लिए

पराज्ञान अथवा परा विद्याकी आवश्यकता होती है । ब्रह्मात्माओंने अपने प्राकट्यके साथ साथ यह पराविद्या एवं ब्रह्मविद्याको प्रकट किया है । यह विद्या नवतनपुरीमें प्रकट हुई है इसलिए नवतनपुरी धाम धन्य है,

नवतनपुरी भली पेरे, चित्तसों चरचानी ।
साथी जो बेहद के, तिनहुं पेहेचानी ॥

(प्रकाश हि. ३१/२०)

निजानन्दाचार्य श्री देवचन्द्रजी महाराजने प्रकट होकर सर्वप्रथम बेहदका मार्ग दिखाया। श्रीमद्भागवत ग्रन्थ समस्त वैदिक वाङ्मयके परिपक्व फलकी भांति सार तत्त्व है । इसमें बेहदकी बात कही है । यह ग्रन्थ इस जगतमें ब्रह्मात्माओंके अवतरणकी साक्षी देता है । व्रज और रासकी लीला ब्रह्मात्माओंकी ही है । इन लीलाओंका वर्णन करनेवाला ग्रन्थ वास्तवमें ब्रह्मात्माओंके लिए महत्त्वपूर्ण साक्षी ग्रन्थ है । ऐसे अनेक ग्रन्थ हैं जिनमें बेहदकी चर्चा की गई है। किन्तु तारतम ज्ञानका अवतरण होनेपर ऐसे ग्रन्थोंके सारे रहस्य स्पष्ट हो गए हैं । अब इस ज्ञानके द्वारा हमें अपने अन्तःकरणकी शुद्धि करनी होगी । तभी आत्मामें जागृति आएगी ।

इस प्रकरणमें महामतिने बेहद लीला अर्थात् अखण्ड लीलाका रहस्य स्पष्ट किया है । नश्वर जगतमें भी पूर्णब्रह्म परमात्माने अपनी आत्माओंके साथ परमधामकी जैसी लीला की है । उन लीलाओंको व्रज, रास और जागनी लीला कहा है। व्रज और रासकी लीलाके पश्चात् ब्रह्मात्माएँ परमधाममें जागृत होती हैं किन्तु मायाका खेल देखनेकी उनकी इच्छा अभी भी पूर्ण नहीं होनेसे उन्हें पुनः कालमायाके ब्रह्माण्डमें भेजा गया। उनको कालमायाके ब्रह्माण्डमें भेजते हुए जिस मार्गसे अवतरित किया है उसे प्रतिबिम्ब लीला कहा है । यद्यपि यह लीला असली व्रज रास लीलाको समझानेके लिए वर्णित की गई एक कडी (शृंखला) है जो ब्रह्मात्माओंके नश्वर जगतमें आगमनको अखण्ड व्रज और रासलीलाके साथ जोडती है। नश्वर जगतकी आत्माओंको अखण्डलीला रसका आस्वादनका लाभ नहीं मिल सकता किन्तु वे प्रतिबिम्ब लीलारसका आस्वादन कर अखण्ड लीलाका अनुमान

कर सकते हैं । इसके लिए उन्हें प्रतिबिम्ब लीलाका आस्वादन करवाया । यह स्पष्टता भी महामतिने यहाँ पर की है ।

नरसी मेहताने व्रजलीलाके साथ साथ रासलीलाके रसका आस्वादन करनेका प्रयत्न किया । वह यही प्रतिबिम्ब लीला है । ब्रह्मज्ञान तारतम ज्ञानके अभावमें अखण्ड लीलाका आस्वादन करना सम्भव नहीं होता । इस तथ्यको स्पष्ट करते हुए महामतिने एक और उदाहरण दिया । शुकदेवजी रास लीलाका वर्णन करने लगे थे उस समय राजा परीक्षितके प्रश्न करनेके कारण उनका ध्यान टूट गया । उन्होंने रासलीलाका थोडासा आस्वादन अवश्य किया किन्तु वे परीक्षितको यह स्वाद नहीं चखा सके । राजा परीक्षितके प्रश्नके कारण उन्हें भी इस रससे वञ्चित होना पड़ा । महामतिने इसका स्पष्टीकरण करते हुए समझाया कि विभिन्न शास्त्रोंमें इस प्रकार बेहद लीला अथवा बेहद ज्ञानका अल्प वर्णन ही हुआ है । ये सभी ग्रन्थ साक्षी ग्रन्थ हैं । स्वयं पूर्णब्रह्म परमात्मा अथवा उनके साथ लीला करनेवाली आत्माएँ ही इन लीलाओंका स्पष्ट विवरण दे सकती हैं । अन्यथा अखण्ड लीलाके पात्र बिना उसका ज्ञान नहीं हो सकता है ।

निजानन्दाचार्य श्री देवचन्द्रजी महाराजको पूर्णब्रह्म परमात्माने दर्शन देकर यह लीला देखाई और इसका आस्वादन करवाया साथ ही संसारके जीवोंको भी इसका ज्ञान करवानेके लिए तारतम्य ज्ञानका उपदेश देकर स्वयं उनके हृदयमें विराजमान हुए । इस प्रकार स्वयं पूर्णब्रह्म परमात्माने ही अपनी लीलाओंका प्रतिपादन किया है । श्री देवचन्द्रजी महाराज पूर्णब्रह्म परमात्मा श्री कृष्णके साथ महामति श्री प्राणनाथजीके हृदयमें विराजमान हुए और महामतिके द्वारा यह पराविद्या बेहदवाणी अवतरित हुई । शास्त्रोंमें पराविद्याका वर्णन करते हुए ब्रह्मधाम, ब्रह्मलीला और ब्रह्मके स्वरूपको समझानेवाली विद्याको पराविद्यामें भी ब्रह्मविद्या कहा है । अविनाशी ब्रह्म एवं अविनाशी धामके विषयमें भी समझना आवश्यक होता है । **'सा विद्या यदक्षरमधि गम्यते'** कहकर उपनिषदोंने अविनाशी ब्रह्म एवं अविनाशी धामका रहस्य समझानेवाली विद्याको ही यथार्थमें विद्या कहा है । नश्वर जगतका ज्ञान तो

विद्या नहीं अपितु अविद्या है । नश्वर ब्रह्माण्ड़ोंको नेत्र भ्रमण मात्रमें बनाने वाला परमात्माका दूसरा स्वरूप है उसे अक्षर ब्रह्म कहते हैं । वे ब्रह्माण्डोंको बनाते हैं और मिटाते हैं । इसलिए शास्त्रोंमें उनको कार्यब्रह्म कहा है । जिस प्रकार क्षर ब्रह्म भगवान नारायण एक होते हुए भी विभिन्न कार्योंके कारण ब्रह्मा, विष्णु, महेशके रूपमें व्यक्त होते हैं इसी प्रकार अक्षर ब्रह्मके विषयमें भी समझना चाहिए । वे तो क्षर ब्रह्मसे अति विशिष्ट हैं । वे ऐसे अनन्त क्षर पुरुषोंको प्रकट करते हैं और लीन करते हैं । उनका विस्तार भी बहुत बड़ा है । किन्तु शास्त्रोंमें उसका वर्णन नहिंवत् है । शास्त्रोंमें अक्षर ब्रह्मके विभिन्न स्वरूपोंमेंसे थोड़े स्वरूपोंका वर्णन भिन्न भिन्न रूपमें किया है । जैसे प्रणव ब्रह्म, गोलोकीनाथ आदि । मुख्यरूपसे अक्षर ब्रह्मको चतुष्पाद विभूति कहा है । उनके एक एक पादमें भी विभिन्न स्वरूप हैं । इन सभीको समष्टिरूपमें अक्षरब्रह्म कहा है । अक्षर ब्रह्म एवं उनके विभिन्न स्वरूप तथा उनके विशाल क्षेत्रका ज्ञान करवानेवाली विद्या पराविद्या है । पूर्णब्रह्म परमात्मा तो उनसे भी विशिष्ट हैं । शास्त्रोंने उनको अक्षरसे उत्तम होनेसे उत्तमपुरुष, अक्षरातीत, पूर्णब्रह्म, परम सत्य, एक, अद्वितीय आदि कह कर उनका मुख्य नाम श्री कृष्ण कहा है । मूलतः पूर्णब्रह्म परमात्मा श्री कृष्ण हैं । वे विश्व ब्रह्माण्डके राजाओंके भी राजा एवं सबके स्वामी होनेसे श्री राज कहलाते हैं ।

जिस प्रकार ब्रह्मका क्षर, अक्षर और अक्षरातीत स्वरूपका प्रतिपादन हुआ है उसी प्रकार श्रीकृष्णका भी क्षर, अक्षर और अक्षरातीत स्वरूपका प्रतिपादन हुआ है । स्वयं पूर्णब्रह्म परमात्मा अक्षरातीत श्री कृष्णीने प्रकट होकर श्री देवचन्द्रजी महाराजको यह रहस्य समझाया और वे स्वयं उनके हृदयमें विराजमान हुए । यह कार्य सर्वप्रथम नवतनपुरी धाममें हुआ है । इसलिए महामतिने इसके लिए कहा, यह पराज्ञान, पराविद्या, ब्रह्मविद्या श्री तारतम ज्ञान है उसका अवतरण नवतनपुरीमें हुआ है । यथा,

पेहेले बीज उदय हुआ, पुरी जहाँ नौतन ।
सब पुरियोंमें उत्तम, हुई जो धन धन ॥

(प्रकाश हि. ३१/ १०४)

इस प्रकार यह नवतनपुरी सभी पुरियोंमें उत्तम मानी गई है । महामति श्री प्राणनाथजीने नवतनपुरीका महत्त्व वारंवार समझाया है। यह श्री कृष्ण प्रणामी धर्मकी गंगोत्री है । यहाँ पर पूर्णब्रह्म परमात्माका वास है । महामति पुनः कहते हैं,

ए मध्ये जे पुरी कहावे, नौतन जेहनुं नाम ।
उत्तम चौदे भवनमां, जिहां वालानो विश्राम ॥

इस प्रकार ब्रह्मज्ञानके अवतरणसे यह भूमि धन्य हुई है । यथा,

धन धन पुरी नौतन, जहां लीला उदे हुई ॥

(प्रकाश हि. ३१/१३४)

महामतिने तारतम ज्ञानका महत्त्व समझाते हुए कहा, इसके द्वारा क्षर, अक्षर और अक्षरातीतका रहस्य स्पष्ट होता है । आज पर्यन्त इस जगतमें यह रहस्य स्पष्ट नहीं हुआ था । निजानन्दाचार्य श्री देवचन्द्रजी महाराजने तारतम ज्ञानके द्वारा इस रहस्यको स्पष्ट किया जिसके कारण यह ब्रह्माण्ड ही धन्य हो गया और ब्रह्मात्माओंको मायाका खेल देखते हुए भी परमधामका ब्रह्मानन्द रसके आस्वादनका लाभ प्राप्त हुआ । यथा,

धन धन धनी साथसों, धन धन तारतम ।
पूरन प्रकाश ल्याए के, सुख दिए हम ॥
तारतम रस बेहद का, सब जाहेर किया ।
बहुत विधें सुख साथ को, खेल देखते दिया ॥

(प्रकाश हि. ३१/१३५,१३६)

तारतम ज्ञान ब्रह्मज्ञान है इसलिए तारतमका रस ब्रह्मानन्द रस है । जो इसका पान करेंगे उन्हें मायाके प्रभावसे छुटकारा मिलेगा । अन्यथा मायाका जहर उनके ऊपर चढा रहेगा । महामतिने इसी तारतम ज्ञानके रसको वाणीके द्वारा पान करवाया और सुन्दरसाथको निर्विष बना दिया । यथा,

तारतम रस बानी कर, पिलाइए जाको ।
जेहेर चढ्या होय जिमीका, सुख होवे ताको ॥

जो जीव नींद छोडे नहीं, पिलाइए बानी ।
ल्याए पीउ वतनथें, बल माया जानी ॥
जेहेर उतारने साथ को, ल्याए तारतम ।
बेहद का रस श्रवनें, पिलावें हम ॥
ए रस श्रवनों जाके झरे, ताए कहा करे जेहेर ।
सुपन ना होवे जागते, देखीतां बेर ॥

(प्रकाश हि. ३१/१३७-१४०)

अक्षर और अक्षरातीत अर्थात् बेहद एवं उससे परेका ज्ञान करवानेवाला यह तारतम ज्ञान बेहदवाणीके द्वारा यहाँ समझाया है। इसके रसपानसे मायाका जहर उतरता है और आत्माको स्वयंका ज्ञान एवं अनुभव होता है। यही आत्म जागृति है। आत्मा जागृत होनेपर परमधाम एवं पूर्णब्रह्मका भी ज्ञान एवं अनुभव कर सकती है। ऐसी अनुभूतिकी महत्ता बेहदवाणीमें समझायी गई है।

विश्वके विभिन्न धर्मग्रन्थोंमें आत्मा, परमात्मा एवं परमात्माके धामका उल्लेख किया है। किन्तु प्रतिपादन शैलीके अन्तरके कारण उनकी एकरूपता नहीं है। ऐसे सभी ग्रन्थोंका तारतम्य समझना अति आवश्यक होता है। इन सभी शास्त्रोंका लक्ष्य एक ही है किन्तु देश, काल और परिस्थितिके अनुसार प्रतिपादन शैलीमें विविधता आई है। इन विविधताओंको दूर कर इनके ऐक्यका प्रतिपादन ही इनका तारतम्य है। इसीको तारतम्य ज्ञान कहा है। निजानन्दाचार्य श्री देवचन्द्रजीं महाराज एवं महामति श्री प्राणनाथजीने एकत्त्वका प्रतिपादन किया है। स्वयं पूर्णब्रह्म परमात्माने दर्शन एवं उपदेश प्रदान कर सर्वप्रथम एकत्त्वका बोध करवाया। पूर्णब्रह्म परमात्मा द्वारा करवाया गया यह बोध निजानन्दाचार्य श्री देवचन्द्रजी महाराज एवं महामति श्री प्राणनाथजीके द्वारा इस जगतको मिला है। इसलिए सामान्य जन समझते हैं कि तारतम्य ज्ञान तो श्री कृष्ण प्रणामी सम्प्रदायका ज्ञान है। वास्तवमें तारतम्य ज्ञान पूर्णब्रह्म परमात्मा द्वारा प्रदत्त ज्ञान है उसे प्रकट कर प्रचारित करनेका श्रेय श्री कृष्ण प्रणामी सम्प्रदायको प्राप्त है। यह ज्ञान पूरे विश्वको अखण्ड सुख प्रदान करनेके लिए प्रकट हुआ है।

श्री निजानन्द कथामृत

(ब्रह्मलीन पं. श्री कृष्णदत्त शास्त्री विरचित

निजानन्द चरितामृतसे)

गतांक पृष्ठ २६ से क्रमश.....

श्रीजीका वैराग्य और शरीर कसौटी

श्री महेराजजीको इस प्रकार संयम और कष्ट करते करते अनन्तर्वृत्ति परमधामके अभिमुख हो गई और मूल स्वरूपके दर्शन होते ही चित्त शांत हो गया एवं आत्मामें एक प्रकारका दिव्य आनंद भासने लगा।

इधर सब लोग श्री मिहिरराजजीके शरीर की क्षीणता और निष्क्रियताको देखकर चिन्तित हो रहे थे, किंतु किसीके कहनेकी उनपर असर नहीं पड़ती थी, अतः निजानंद सद्गुरुके पासमें जाकर बालबाई[१] प्रार्थना करने लगीं।

एक भ्रात प्रथमहिं चले, अब ये भये तैयार ।
देहु सिखापन क्यों नहीं, भय नहिं उपजत सार ॥

कहने लगीं –एक भाई तो पहले ही चल बसे, अब ये दूसरे भी मरनेको तैयार हो रहे हैं, आप बुलाकर समझाते क्यों नहीं ? आप नहीं जानते कि ये इस प्रकार बिना अन्न ग्रहण करे सूख–सूख कर मर जायेंगे तो दुनिया क्या कहेगी ? अतः मैं प्रार्थना करती हूं कि आप श्री महेराजजीको अपने पास बुलाकर समझा दीजिये, जिससे वे हठ छोड देवें। इस भांति बालबाईकी अभ्यर्थना सुनकर श्री निजानंद सदगुरुजीने श्रीमहेराजजीको अपने पास बुलाया और उनसे पूछने लगे – हे मिहिरराजजी ! तुम किस लिये इतना कष्ट उठा रहे हो ? हमें इसका कारण बताओ।

---

१. बालबाई श्रीगांगजीभाईकी बड़ी बहन थीं और बोलनेमें बड़ी चतुर थीं। चिंता तो सबको थी परंतु निजानंद स्वामीसे कहनेकी किसीको हिम्मत नहीं पड़ती थी।

श्री मिहिरराजजीने कहा – मेरी प्रार्थना है कि आप मेरे विकारों को बता दीजिये, जिससे मैं उन्हें अपने शरीरसे दूर कर सकूं और आत्मा निर्मल हो जावे ।

श्री निजानंद सदगुरुजीने कहा– तुम अपनी आत्मामें किस स्वरूपको देखना चाहते हो । क्या तुम्हें अभी निश्चय नहीं हुआ है ?

श्री मिहिरराजजीने कहा– यह तो मैं समझता हूं कि आपमें और श्रीराजजीमें अंतर नहीं है । आप धामधनी स्वरूप हो । किंतु परमधामकी चर्चा करते समय जिस प्रकारसे आप वर्णन करते हो उस समय हमें भी वैसा भासने लगता है । परंतु आपके उठ जाने पर फिर हमें कुछ भी नजर नहीं आता । आपके मुखारविंदसे जब–जब चर्चा श्रवण करते हैं, रोमांच होता है, नेत्रोंसे अश्रुधारा बहा करती है, एवं चित्तमें आभास भी होता है । परंतु जैसे आप परमधामको देखकर वर्णन करते हो और सबके स्वरूपोंको देखकर पहचान लेते हो, उस प्रकार हमें क्यों दृष्टिगोचर नहीं होता ? इसका क्या कारण है ? वह कृपाकर बता दीजिये । सदगुरुजीने कहा यह तो धामधनीकी इच्छा पर निर्भर है । परमात्माने इसे एक ही हृदयमें सीमित रखा है, दूसरे में नहीं ।

हुकुम धनीको एकमें, कह्यो न अन्त विचार ।
बैठो मोहि उठाईकै, तुम गादी सरदार ॥
मैं देखत जा भांतिसों, तब त्यों तुमहिं दिखाई ।
जानत मोहिं धनी नहीं, मुखतें कहत लखाई ॥
देखौ मोहीं दृष्टि करि, ये साक्षात् सरूप ।
कहा नफा है धाममें, सेवा करौ अनूप ॥
देखै धामधनी मोहिं, पलक न फेरै नैन ।
निसदिन देई प्रदक्षिणा, यहीं नफा है ऐन ॥

(वृत्तांत मु. ३८)

हे मिहिरराजजी ! यदि तुम मेरी तरह परमधामको देखना चाहते हो तो मुझे उठाकर इस गादीके सिरदार(गादिपति आचार्य) बनकर बैठ

जाओ, तब तुम्हें भी परमधाम दृष्टिगोचर होने लगेगा । क्योंकि श्रीराजजीने इस बातको एक ही व्यक्तिमें मर्यादित रखा है[१] । परंतु इस परमधामके दर्शनमात्रसे अभी तुम्हारा ध्येय पूरा नहीं हो सकता । तुम तो श्री सदगुरुजीको साक्षात् स्वरूप जानकर सेवा करो, उसीमें कल्याण है ।

मुखसे तो कहते हो कि मैं आपको धामधनी स्वरूप समझता हूं, परंतु विश्वास नहीं रखते । यदि मुझे साक्षात् धामधनी स्वरूप समझते तो एक पलमात्र भी मेरी तरफसे नेत्र न फेरते । निशदिन मेरे ही स्वरूपके ध्यानमें लगे रहते । रात्रि दिवस प्रदक्षिणा दिया करते । यह सब तो करते नहीं, प्रत्युत मैं जिस बातको कहता हूं उसे टालते हो । मैं तुम्हें निर्मल कहता हूं तो तुम उलटा अपनेको समल मानते हो । यह कितनी विचित्र बात है ।

इस प्रकार निजानंद सदगुरुजीने अपने यथार्थ स्वरूपका रहस्य समझाया । इसके अतिरिक्त बालबाईने भी बहुत कुछ कहा कि साक्षात्

---

१. श्री नवरंग स्वामीने इस प्रसंगको कुछ रूपांतरसे इस प्रकार लिखा है कि –जब श्रीजीका शरीर कसौटी और संयम करते करते एकदम क्षीण हो गया और मरनेकी तैयारी होने लगी, तब धनी श्री देवचंद्रजीने अपने पास बुलाकर बहुत कुछ समझाया, परंतु श्रीजीके दिलमें सदगुरुकी बात न जमी और परमधामके दर्शनकी हठ करने लगे । श्री निजानंद स्वामी समझ गए कि इनको अभी मेरे स्वरूपकी यथार्थ पहचान नहीं हुई है, अत एव परमधामके मूल स्वरूपोंको देखनेकी इच्छा होती है । यदि मेरे स्वरूप पर पूर्ण विश्वास होता और मुझे साक्षात्स्वरूप समझा होता तब तो परमधामके लिये हठ ही न करते, अतः इनको मूल स्वरूपका यथार्थ ज्ञान कराना चाहिये । इस प्रकार निश्चयकर आप जिस गादी पर विराजमान थे, उठकर खडे हो गए । यथा –

विरह वियोग चित्तमें धार्यो, शरीर छोडिवो आप विचार्यो ।
नहीं खान पान सुख कोई, सुन्यो धनी देवचंद्रजी सोई ॥
कही विध समझाईके केती, श्रीजीसाहब न मानी तेती ।
जबे गादी छोडकै दीनी, तब समझे बात जो झीणी ॥
धनी एक ही ठौर सुहावैं, ताकी दई दूजेमें आवैं ।
पंच सरूप एकके माहीं, एकतें विछुरैं तब दूजे जाहीं ॥

(सुंदरसागर ३७)

धामधनीकी सेवा करके आत्माको सफल क्यों नहीं करते ? क्या यह समय बार बार मिलेगा ? परमधाममें तो सदाकाल रहना ही है, उसकी चिंतामें क्यों पडे हो । इस जगतके बीचमें आये हो तो सदगुरुकी सेवा करो । इस प्रकारसे दोनोंकी बातें सुनकर परमधाम देखने का जो मनोरथ था, वह तो दूर चला गया ।

ये बातें सब सुनत ही, भयो मनोरथ भंग ।
चूक बडी मोतें परी, समझ्यो नाहिं अभंग ॥

अब तो एक प्रकारका उलटा भय लगने लगा कि मुझसे बडी भूल हुई जो धामधनी स्वरूप श्री सदगुरुजीकी साक्षात् सेवा को छोडकर इधर उधर शरीर कसौटीमें लगा रहा और सदगुरुजीके साक्षात् स्वरूपपर विश्वास न रख सका । मुझे तो श्री सदगुरुजीकी तन मन धनसे सेवा करनी चाहिये थी, यह न बन सकी । इस प्रकार बडे खेदके साथ बार बार पश्चाताप करने लगे ।

श्री निजानन्द स्वामीजीने बालबाईजीके साथ परामर्श किया कि इनको तत्काल तो हमारे समझानेसे सन्तोष हो गया है, परन्तु संभव है कि वैराग्यके कारण इनके चित्तमेंसे पुनः हमारा उपदेश हट जावे । इसलिये इनको किसी लौकिक कार्यमें लगा देना चाहिए । जिससे एक तो इनके चित्तका वैराग्य भी शान्त हो जायेगा और दूसरा हमारी धार्मिक आज्ञाका पालन भी होता रहेगा । इस प्रकार निश्चय कर किसी कार्यके बहाने श्री मिहिरराजजीको अहमदाबाद भेज दिया । श्रीजी (मिहिरराजजी) श्री निजानन्द स्वामीजीकी आज्ञा शिरोधार्य मानकर अहमदाबादको रवाना हुए ।

बस, श्री सद्गुरुजीके खडे होते ही सब रहस्य एकदम प्रत्यक्ष भासने लगा । पांचों स्वरूपोंका प्रकाश श्रीसदगुरुके अन्दर दृष्टिगोचर होने लगा । परमधामकी सम्पूर्ण सामग्री श्रीसदगुरुजीके धामदिलमें नजर आने लगी । समझ गए यह सब श्री सदगुरुजीके धामदिलमें विद्यमान है । इन्हीके द्वारा मुझे प्राप्त होना है । जहां तक साक्षात् सदगुरुजी विद्यमान हैं, इनकी सेवा करनी चाहिए । परन्तु बडे खेदकी बात है कि अबतक राज काज और अन्य बंधनोंके कारण मैं सदगुरुकी सेवा न कर सका । इस प्रकार अपने मनमें खेद प्रकटकर पछताने लगे ।

उस समय पक्की सडक, रेलगाडी और मोटर सर्विस तो थी नहीं, अतः प्रायः मनुष्य बैलगाड़ियों द्वारा आया जाया करते थे। सुनते हैं कि जब श्रीजी अहमदाबादके नजदीक पहुंचे तो साबरमती नदीके किनारे गाडीके पहिये रेतीली जमीनके अन्दर इतने गहरे धस गये कि बैलोंके बहुत कुछ जोर लगाने पर भी मुसीबत बीतने लगे। उसी समय श्रीजीने संसारके भारकी तुलना मनुष्यरूपी बैलके साथ करते हुए एक कीर्तन बनाया। यथा–

धोरीडा मा मूके तारी धूसरी।
बाटडी विसमी गाडी भार भरी, धोरीडा मा मूके तारी धूसरी ।।
धोरीडा आरें मारे रे, हां रे तुने गोधें घणें।
तुं तां नाके तथाणो रे। तु तां बंध बंधाणो रे, गुण आपणे रे ॥

(किरंतन प्र. १२०)

यह कीर्तन और लम्बा है। शब्दोंकी रचना और भाव इतने सजीव हैं कि पढनेवाले हृदयमें तत्काल चुभ जाते हैं। और दोनों तरफ घटनेवाले एवं वैराग्यबोधक हैं। यह कीर्तन श्रीमुखवाणीमें आज भी दर्ज है। श्रीजीके हृदयमें जो विरक्त दशा जाग्रत हो रही थी। लौकिक कार्यकी तरफ आकर्षित होनेसे अब उसका जोर कम हो गया। आठ मास पर्यन्त आप गुजरातमें रहे। तदनन्तर कार्य पूरा हो जाने पर श्री ५ नवतनपुरी धाम लौट कर आये।
ठहर्यो चित तहां नहीं, जगत कहानों लेई ॥ (क्रमशः.....)

निन्दासे निद्रा भली

एक बड़े लेखक एक प्रहर रात रहते ही उठकर समालोचना लिखा करते थे। एक दिन उनके पिताजीने पास आकर उनकी प्रशंसा की। उसे सुनकर वे गर्वसे फूल गये और बोले कि 'आपके दूसरे लड़के तो अबतक नींदमें ही पड़े सो रहे हैं, वे भी मेरी तरहसे किया करें तो उनकी भी इज्जत हो।' पिताने उदास होकर कहा, बेटा ! रातके तीसरे पहर जगकर इस प्रकार अपनी शेखी बढ़ाने और दूसरोंकी निन्दा करनेकी अपेक्षा तो गहरी नींदमें सोए रहना ही उत्तम है।

श्री कृष्णजीके प्रति श्री देवचन्द्रजीकी भक्ति

श्री कृष्ण प्रेम सचमुचमें चमत्कार है। किसके जीवनमें और कब प्रगट हो जाय, कुछ कहा नहीं जा सकता। चैतन्य महाप्रभुके कीर्तनकी टंकार एक हरिदास ठाकुरको मुग्ध कर बैठी थी। हरिदास ठाकुर एक मुस्लिम परिवारमें जन्मे थे। परन्तु श्री कृष्ण रस तो मनुष्यका जन्म, जाति, वर्ण, अवस्था कुछ भी नहीं देखता। उस समयका राजा मुसलमान था, एक मुसलमान साथीको श्री कृष्णजीको धुन लगाते देख उसे अच्छा नहीं लगा। उसने हरिदासको कई बार कोड़े लगवाए लेकिन पता नहीं भीतर कौनसी आत्मा विराजमान थी, हर कोड़े लगनेके साथ ही **हरे कृष्ण हरे कृष्ण**का अलाप करती रही। अन्तमें मारनेवाली संकीर्णता हार गयी पर श्री कृष्ण माधुरीका रस फीका नहीं हो पाया।

यही कारण है कि आज भी पश्चिम देशोंमें और ईरान जैसे कट्टरपंथी देशमें जन्में युवक भी हरे कृष्ण आन्दोलनमें बहे जा रहे हैं। हाथमें करतालें लिए, मृदंग बजाते हुए लंदन न्यूयार्क, टोक्यो जैसे शहरोंकी सड़कों पर श्री कृष्ण नामके रस जन जनमें संचार कर रहे हैं।

आजसे ४३८ वर्ष पूर्व उमरकोटमें प्रकटे श्री देवचंद्रजीने भी अपनी छोटी सी बालअवस्थामें श्री कृष्ण प्रेमका परिचय दिया था। श्री कृष्ण लीलाके अलावा कुछ भी दूसरा सुनना, पढ़ना, बात करना सुहाता न था जिधर भी भागवत कथा हो रही हो, वहां पहुंच कर उसका रसास्वादन करना उनके जीवनका एक मात्र कार्य हो गया। माता पिता बड़े चिन्तित थे कि क्या किया जाए इस कृष्ण उन्मत्त पुत्रके साथ। एक ही पुत्र था और घरमें व्यापारका काम होता था, पिता सोचते होंगे कि कौन संभालेगा उसे।

पुत्रको भी बस एक काम था। सुबह भजन पूजन करना और दिनमें कथा श्रवण। भागवत कथा उन दिनों बड़े बड़े नगरोंमें नित्य वर्ष भर चला करती थी, जैसा कि आज भी वृन्दावन जैसी नगरीमें देखनेको मिलता है। इसलिए नित्य कथा श्रवण करना, फिर भोजन और थोड़ासा विश्राम। जामनगरकी कथा श्रवणका नियम श्री देवचन्द्रजीने संवत १६६५ कार्तिक माससे साधा था और इसी समय उन्हें अपने पत्नी लीलबाईसे बिहारीजी पुत्रकी प्राप्ति कथा नियमसे पूर्व हो चुकी थी, उसके पश्चात् एक पुत्री जमुनाबाई सुख भी उन्हें हुआ। जिसके बाद उनके भीतर भक्ति रसने पूर्ण वैराग्य उत्पन्न किया और उन्होंने स्त्री संग त्याग दिया।

कहते हैं प्रभु अपने भक्तकी परीक्षा अवश्य लेते है, तभी उनके दर्शन होते हैं। देवचन्द्रजीका जीवन सीधा सादा था, उनकी परीक्षा लेना इतना आसान न था। एक ही उपाय था कि उनका नित्य कथा श्रवण कर भोजन करनेका जो नियम था कि उसे तोड़नेकी लाचारी उनके भीतर पैदा की जाये। फिर देखा जाये कि वे नियम तोड़ पाते हैं या स्वयं ही टूट जाते हैं। चौदह वर्ष लगातार जामनगरमें नित्य कथा श्रवणका नियम सध गया था। चित्तमें शायद ही कोई वासनाकी रेखा शेष रह गयी हो, जिसे वे अभी तककी भगवद् भक्तिसे न धो पाये हों। इसलिये जब अन्तःकरण शुद्धि पूरी हो चुकी हो और भक्तका समर्पण पूरा घट चुका हो, तो प्रभु दर्शन होने ही चाहिये।

बस एक अन्तिम परीक्षा और रात्रिके अन्धकारका प्रथम रश्मिसे मिटना शेष था। श्री देवचंद्रजीकी आयु चालीस वर्षके लगभग पहुंच रही थी। भादोंका महीना था। एक दिन बुखारने आ घेरा। ज्वरकी पीड़ा इधर बढ़ती गयी और उधर उनका भोजन बन्द हो गया। उनके कथा नियम की यह महान चुनौती थी भीतरसे उन्हें अवश्य ही इसका भान हुआ होगा। क्योंकि एक सप्ताहके बाद दूसरा सप्ताह और शरीर हर प्रकारसे टूटता जा रहा था, लेकिन उनका कथा श्रवणमें जाना नहीं रुका। माता पिता परेशान थे, वैद्य भी चिन्तित हो उठे। बेचारी पत्नी लीलाबाईकी तो और भी बुरी

हालत थी । बच्चे छोटे थे जिनकी सेवाके साथ साथ पतिकी सेवामें दिन रात रहना पड़ता था । कितना घरमें विरोध होगा, श्री देवचंद्रजी सामने और फिर भी वे नित्य कथा श्रवण में जा रहे थे ।

लंघनके बाईसवें दिन माता पिताने उनको कथामें जानेसे रोकनेके लिए दरवाजे बन्द कर दिये । श्री देवचंद्रजीके लिए दरवाजे बन्द कर ताला लगा दिया । दूसरी ओर अपने माता पिताके इस तरहके आग्रहसे, नियम भंग होते देख भीतरसे व्यथित तुरन्त चक्कर खाकर जमीन पर गिर पड़े । निदान, माता पिताके पास भी दूसरा रास्ता न था । जिसे वैद्य अभी तक न ठीक कर पाये, उनकी समझमें आ गया कि अब वह केवल प्रभुके सहारे ठीक हो सकता है । श्री देवचंद्रजीके कानमें परमात्माका नाम लिया और कहा कथा श्रवणके लिए चलिए हम स्वयं पहुंचा देंगे । धीरेसे देवचंद्रजीकी बेहोशी दूर हुई और पिताके सहारे कथामें पहुंचे ।

श्री देवचंद्रजीकी कसौटीका यह अन्तिम दिवस था । और वे इतने खरे निकले कि प्रभु मिलनमें जान जाए तो चला जाए । उसी दिनसे उनका ज्वरका वेग कम हो चला और पन्द्रह दिनके भीतर ही वे पुनः स्वस्थ हो गए । परमात्माके ऊपर अटुट विश्वासका यह चमत्कार था । विश्वासका चमत्कार और भी कई मौकों पर देख चुके थे । छोटी अवस्थामें घरसे जब वे प्रभु खोजके लिए रेगिस्तान क्षेत्रमें बाहर निकल पड़े थे, तो किस प्रकार एक अपरिचित पुरुषने उनकी सहायताकी थी, इसका स्मरण उन्हें सदैव रहा । ध्यानमें कैसे कैसे कृष्णकी लीलाए देखकर उनकी भक्तिको बल मिला, इन सबने ही उनके चित्तको इस अन्तिम परीक्षाके लिए तैयार किया था । यह उसीका फल था कि वे इस कसौटीमें खरे उतरे और उनका हृदय प्रभु अवतरणके योग्य बना ।

रविवारका दिन था । संवत १६७८(सन् १६२१) आश्विन कृष्ण पक्षकी चौदस तिथि थी । श्री देवचंद्रजी कथा सुन रहे थे कि अचानक उनका ध्यान लग गया । उस ध्यानमें उन्हें पूर्णब्रह्म परमात्मा श्री कृष्णजीके दर्शन हुए, उनसे संवाद हुआ ।

इस सम्वादमें पूर्णब्रह्म परमात्मा श्री कृष्णजीने श्री देवचन्द्रजीसे कहा, यह सृष्टि तुमको दु:ख लीला दिखानेके लिए बनाई गई है। कितनी ही और आत्माए है, जिनका इस दु:ख नाटकसे तुम्हारी तरह देखते देखते जी भर गया होगा। इसलिए अब तुम एक काम करो, धर्मपीठकी स्थापना कर वहाँ बैठ जाओ और जो मंत्र मैं तुमको देता हूं उसे दूसरोंको देकर उन्हें भी यह रहस्य समझाओ। मैं तुम्हारे भीतर अपना आवेश प्रदान करता हूं जिससे तुम्हें बल मिलेगा।

परमात्माके दर्शन होते ही उन्हें अपने स्वरूप की पूर्ण पहचान हो गयी, और पता चल गया कि सृष्टि लीलामें उनका आना क्यों हुआ है तथा कैसे इस लीला की समाप्ति होगी। ज्ञानकी यह घटना कोई मामूली नहीं है, बल्कि मनुष्यकी सत्य खोजके हजारों वर्ष लम्बे इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। श्री देवचंद्रजीके पहले भी अनेकों सत्यदृष्टाओंने अपनी सत्यकी अनुभूतियोंको अपने अपने ढंगसे प्रस्तुत किया था, परंतु श्री देवचंद्रजीका अपना अनुभूति निर्वचन कुछ विलक्षण ही रहा। इतने सरल ढंगसे उन्होंने सभी सत्यद्रष्टाओंकी पृथक-पृथक अनुभूतियोंको समेट कर एक तारतम्यमें बांध दिया कि अब किसी भी सत्यद्रष्टा की अनुभूतिको उस तारतम्यसे अलग हटाकर समझना संभव न रहा।

इसी प्रकार श्री देवचंद्रजीको जब परमात्माने ब्रह्मांडका तारतम्य ज्ञान देकर हर जीवकी, हर आत्माकी अपनी पृथक अनुभूतियोंकी यात्राकी बात समझा दी तो अब तक की विविध सम्प्रदायोंकी जितनी भी संकीर्ण बाते उन्होंने सुन रखी थी उनका मर्म उनकी समझमें आ गया। उन्हें स्पष्ट दीखने लगा कि यह समूचा अस्तित्त्व असंख्य चेतना केन्द्रोंके अपने अनोखे ढंगसे अनुभव करनेका माध्यम है। हर चेतना केन्द्रकी अपनी यात्रा है। अस्तित्त्वके साथ सम्बन्धित होनेका अपना ढंग है। अपनी निसबत है। अपने केन्द्रमें वह अनुभूतिकी एक परम लालसा है और परिधिमें वह अन्य परिधियोंसे ओत प्रोत सम्बन्ध(निसबत)का एक महासागर। केन्द्रमें वह अणु है, परिधिमें विभु। केन्द्रकी अनुभूतिमें अद्वैत, परिधिकी लीला सामग्रीमें द्वैत। परम ब्रह्मकी यह स्वलीला द्वैत विलास लीला है।

इतने गुह्य रहस्यको श्री देवचन्द्रजीने जन साधारणको समझानेके लिए दार्शनिक शब्दावलि नहीं चुनी । क्योंकि दार्शनिक वे कभी थे ही नहीं । तर्क और अनुमानसे यदि सत्यको समझना होता तो वह कार्य उन्होंने उमरकोटमें घर बैठे ही कबका कर लिया होता । मनकी उड़ान और मनकी मान्यताएं सत्यको अपनी आत्मामें प्रतिबिम्बित होनेमें मूल बाधा है, यह उन्हें बचपनमें ही दिख गया था । बुद्धि विलासी लोगोंके जीवनमें उन्होंने जरूर झांका होगा कि किस प्रकार ब्रह्मज्ञानकी घोषणाएं करनेके बावजूद भी उनके जीवनमें ब्रह्मानंदकी रसधारा कहींसे भी प्रवाहित नहीं होती । इसलिए हर एक को उन्होंने निज साक्षात्कार पर बल दिया । बिना स्वयं की अनुभूतिके सत्यको समझाना और समझना दोनों कठिन है । भाषाके माध्यमसे कथानक रूपमें कुछ कहा अवश्य जाता है, लेकिन जब तक मनको हटाकर हर चेतना केन्द्रका अपना केन्द्रीय द्वार न खुले, तब तक उसका असली मर्म नहीं खुलता ।

श्री देवचंद्रजीके पूर्व ज्ञानेश्वर, वल्लभ और चैतन्य इन भक्तोंने भी अनूठी कृष्णभक्ति परम्पराको जन्म दिया था और वारकरी, शुद्धाद्वैत तथा गौडीय सम्प्रदायकी स्थापना की थी । तुकाराम, मीरा, नरसी जैसे भक्त उसी प्रवाहमें भली भांति डूबे थे । लेकिन अभी इस भक्ति परम्परामें एक बातका अभाव खटक रहा था । वह यह कि जिस प्रकार बुद्धसे लेकर कबीर और नानक तक चली आयी सन्त परम्परामें अनुभूतिका बल था, वह इस कृष्ण भक्ति परम्परामें न ही अलवार भक्तोंको और न ही ज्ञानेश्वर वल्लभ व चैतन्यको पूर्णतया उपलब्ध हो पाया था । कृष्णका अनुराग तो परम था, किन्तु अनुभूतिका बल नहीं था । केवल भक्तिका भाव था, शास्त्रका सहारा था, गीता और भागवतकी प्रेरणा थी । जो भी अनुभूति थी वह भाव और महाभाव दशाकी थी । परम तत्त्वका सीधा स्पष्ट साक्षात्कार नहीं था । जितना भी ज्ञान था शास्त्रोंके द्वारा प्रदत्त था, ब्रह्म अथवा कृष्ण उपदिष्ट नहीं था ।

लेकिन फिर भी इन तमाम भक्तोंने भक्तिका बीज बो दिया था और चेतन धरतीकी उर्वरा शक्तिको जगा दिया था । अब केवल वृक्षका

अंकुरित होना शेष था । यह महत् कार्य सीधे शास्त्र वचनों द्वारा सम्भव भी न था । परमात्माका साक्षात् दर्शन जरूरी था, उनके अनुग्रहकी अपेक्षा थी **यमैवैष वृणुते तेन लम्यः** जिसको स्वयं परमात्मा ही चुने और वरण करे उसीसे यह महान कार्य सम्भव हो सकता था । उमरकोटमें जन्मे श्री देवचंद्रजी चौदह वर्षसे निष्ठाबंध होकर भागवत सुन रहे थे । कृष्ण नामकी धुन उनके चित्तमें आठों याम समा चुकी थी । घर, गृहस्थी, बच्चे इत्यादि नाम मात्रके लिए उनके जीवनमें शोभा बनाये थे । सारा कुछ कृष्णको अर्पित हो चुका था ऐसी चित्तकी दशामें एक दिन स्वयं परब्रह्म परमात्मा श्री कृष्णजी उन्हें दर्शन देते हैं और अपने तारतम्य स्वरूपका परिचय कराते हैं ।

आज तक किसी भक्तको साक्षात् परमात्माने इस प्रकार दर्शन नहीं दिये थे । यह इतिहासमें प्रथम घटना थी कि परमात्माने स्वयं भक्तको अपने सम्पूर्ण स्वरूपका इस प्रकार साक्षात्कार कराया हो । परमात्मा स्वयंने शास्त्रोंके सभी विरोधाभाषी वचनोंका मर्म खोला हो, और फिर स्वयं भक्त भीतर अपने आवेश बलसे विराजमान होकर उस परम ज्ञानको सम्पूर्ण मानव जातिके लिए अक्षुण्ण बना दिया हो ।

ऐसा लगता है कि जिस ऋषिको सत्यकी तारतम्य शृंखलामें जिस स्वरूपका ज्ञान हुआ, उसका निर्वचन अलग-अलग शास्त्रोंमें भिन्न-भिन्न रूपमें हुआ । श्री निजानन्दाचार्यको तारतम्य ज्ञानमें उन सबका क्रमानुसार तारतम्य भी अनुभूत हुआ । यही कारण है कि अभी तक दिव्य ज्ञान अनुभूतिकी परम्परामें आचार्य निजानन्दका तारतम्य ज्ञान समवन्यका परम स्वरूप बन गया । इसे उन्होंने कृष्ण चेतना कहा । कृष्णसे उनका तात्पर्य मुरली बजानेवाले वृन्दावनके रूपसे न था । यह कृष्ण तो किसी महाविराट चैतन्यका ब्रह्माण्डमें पड़ा एक अणुरूप प्रतिबिम्ब था । श्री निजानन्दकी कृष्ण चर्चा वस्तुतः परम अस्तित्त्वकी ओर इशारा थी । उन्होंने श्री कृष्णजीके दिव्यधामको परमधाम और पूर्णब्रह्मको श्री कृष्ण कहा ।

इसीलिए निजानन्दजी श्री कृष्णजीकी भक्ति करनेवालोंमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं । उनकी कृष्ण धारणाको लोगोंने स्वलीला-द्वैत कहा, यह शब्द

बड़ा कीमती है। अस्तित्त्व अद्वैत आनन्द रसका सागर है। वह अपनी सम्पूर्णतामें सदा एक रस अखंड है। लेकिन फिर भी लहर तो सागरमें उठती ही है। जब लहर उठती है तो सागरमें भिन्न दीखती है यही है सागरका स्वलीलामें द्वैत होकर भी अपने मूलमें अद्वैत रहना। निश्चित ही लहर भिन्न है, सागरसे। तभी तो हमने उसका नाम सागरसे भिन्न रखा। निश्चित ही आत्माएं परमात्मासे भिन्न हैं तभी तो हमने उन्हें आत्माएं कहा, परम आत्मा नहीं। लेकिन वह भिन्नता उस परमकी स्वलीला मात्र है। लहर सागरसे एक होगी तो वहां कुछ भी लहर जैसा न रहेगा। परमात्मासे उठी हुई आत्माकी लहर जब परमात्मामें लीन होती है तो सर्वत्र ब्रह्म ही ब्रह्म हो जाता है - **सर्वं खल्विदं ब्रह्म**।

देवचन्द्रजी इस साक्षात्कारके बाद निजानन्द स्वामी बन गये और उन्होंने जामनगरमें धर्मपीठ श्री पाँच नवतनपुरी धामकी स्थापना की और धर्मचर्चा करने लगे जैसा उन्हें परमात्माके दिव्य स्वरूपने आदेश दिया था। लोग उनकी चर्चा सुनकर इकट्ठे होने लगे और उनके अनुयायियोंकी एक अच्छी खासी जमात बन गयी।

अपने ७४ वर्षकी आयु तक निजानन्द स्वामी इसी प्रकारका सत्संग करते रहे और देह त्यागनेसे पूर्व अपने एक परम शिष्य मिहिरराज ठाकुरको इस कार्य भारको आगे चलाते रहेनेका उत्तरदायित्व सौंप गए।

मिहिरराज ठाकुर जो कि बादमें श्री प्राणनाथजी कहलाए उन्होंने जब इस पुनीत कार्यको अपने हाथमें लिया, तो अनुयायियोंका वह जो छोटा सा समुदाय था बढ़कर हजारोंमें और उसके बाद लाखोंमें पहुंच गया। इस शिष्य समुदायको लोग निजानन्द सम्प्रदायी अथवा श्री कृष्ण प्रणामी कहकर पुकारते हैं। आज लाखों अनुयायियोंका वह समुदाय भारतके अधिकांश राज्यके साथ-साथ नेपाल, अमेरिका, केनेडा, इग्लेण्ड, न्यूजीलेण्ड, अष्ट्रेलिया, केनिया, अफ्रिका तथा मध्यपूर्वके अनेक देशोंमें रहता है।

शिक्षा ही मानवका जीवन है

सदानन्दजी गोस्वामी

किसी वस्तुके स्वरूप–ज्ञानको विविध रूपसे समझा देनेका नाम शिक्षा है । प्रत्येक वस्तुके ज्ञानके साथ साक्षात् अथवा परम्परा या किसी न किसी रूपमें शिक्षाका सम्बन्ध अवश्यमेव मिलता है । शिक्षाके बिना संस्कारोंका उदय नहीं होता । संस्कार–हीन मनुष्य होते हुए भी पशुकोटिमें माना जाता है । शिक्षा मनुष्यके जन्मके साथ लगी है । मनुष्य मरनेके क्षणतक किसी न किसी प्रकारकी शिक्षा ग्रहण करता ही रहता है । जितना कुछ अनुभव है, जितना कुछ परिचय है, जितना भी ज्ञान ज्ञेय रूपमें अवगत होता है, वह सब शिक्षाका ही प्रसाद है । साधरणतया शिक्षाका अर्थ पढ़ना लिखना माना जाता है । परन्तु वास्तविक अर्थकी ओर दृष्टिपात करें तो विदित होगा कि मनुष्य जीनव शिक्षाओंके पुञ्जसे ही बना है । मनुष्यके जीवनमें से यदि शिक्षाको पृथक् कर लिया जाय तो मनुष्य फिर मनुष्य नहीं रहता किन्तु एक व्यर्थका पशु बन जाता है ।

यों तो शिक्षाके लौकिक – अलौकिक भेदोंमें विविध रूप पाये जाते हैं परन्तु लौकिक शिक्षाका मूल भी कम नहीं है । कारण, शिक्षाके द्वारा ही मनुष्य मनुष्य बनाया जाता है । अन्यथा जन्म आदि व्यापारकी समतामें वह पशु पक्षीके वर्गमें माना जाने योग्य है । तत्काल गर्भमुक्त बालक पशुके समान ही विज्ञानशून्य तथा अविवेकचेष्ट रहता है । इसलिए पशुत्वसे मनुष्यत्वकी ओर ले जानेके लिए माता सर्व प्रथम उसे मनुष्य सुलभ बोलना – चालना, बैठना – उठना आदिकी शिक्षा देती है । ज्यों ज्यों शिशु सयाना होता जाता है, त्यों त्यों उसे पारिवारिक व्यक्तियोंके नाम तथा घरेलु पदार्थोंके रूपका परिचय बताती जाती है एवं समाजके बडों–छोटोंके साथ विशेष शिष्टताके साथ बोलनेका शिक्षण भी प्रायः माताओंसे ही प्राप्त हुआ करता है । संसारमें मनुष्यमात्रका सबसे प्रथम गुरु माता है । सबसे प्रथम पोषक भी माता ही है । पालन–लालनका भार तो माताओंके ऊपर ही निर्भर है ।

विज्ञानं तनुते यज्ञम्

विश्वमें विशेष ज्ञानका विस्तार, नाना प्रकारके संकल्पोंकी सृष्टिका सूत्रपात माताके द्वारा ही होता है । जन्मके साथ और शैशव कालके साथ सबसे अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध माताका है । यदि माता न हो तो मनुष्यको अपने स्वरूपका ज्ञान भी कठिन हो जाए ।

मीयते इति माता

जो मान-समानतासे मनुष्यको मनुष्य बना दे वही तो माता कहने योग्य है ! जो शिक्षासे सम्पन्न करे, मनुष्य कोटिके मानमें - समकक्षमें पहुंचा दे, उसे ही माता कहते हैं । भारतीय संस्कृतिमें, आर्यसभ्यतामें माताका स्थान इसीलिए सबसे ऊँचा माना गया है कि - वह पशु तुल्य शिशुको मनुष्योचित लक्षण सम्पन्न बनाकर उत्तम कोटिके मानव समाजका एक अंग सिद्ध कर देती है । यही कारण है कि,

मातृ देवो भव

श्रुतियोंमें माताको परमात्माके समान पूज्य बाताया है । सबसे प्रथम उपकार और संस्कारका बल मातासे ही प्राप्त होता है । माताके समान अन्य किसीको उच्च स्थान न मिल सका इसका कारण भी शिक्षा ही है । शिशुको उत्तम शिक्षा देनेके कारण ही माताको अद्वितीय उच्च आसन प्राप्त है ।

नास्ति मातृसमो नाथो, नास्ति मातृसममा गतिः ।
नास्ति मातृसमः स्नेहो नास्ति मातृसम सुखम् ॥
नास्ति मातृसमो देव इहलोके परत्र च ।

पद्म पु. सृ. खं. १८

माताके समान कोई रक्षक नहीं, माताके समान कोई मार्गदर्शक नहीं । माताके समान स्नेहका समुद्र नहीं, माताके समान कोई सुखका स्थान नहीं । माताके समान सदृश कोई देव इस लोक और परलोकमें नहीं हो सकता । अतएव मनु लिखते हैं,

उपाध्यायान् दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता ।
सहस्त्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते ॥

मनु २ - १४५

दश उपाध्यायके तुल्य एक आचार्य होता है और दश आचार्यके तुल्य पिताका गौरव माना गया है। पिता भी रक्षण, पोषण और शिक्षण करनेवाला होनेसे आचार्योंसे भी उत्तम माना गया है। परन्तु माताका गौरव तो सैकड़ों उपाध्याय और सैकडों आचार्य एवं सैकडों पिताओंकी अपेक्षा भी अधिक माना गया है। यह सब क्यों और किस लिए ? उत्तरमें शास्त्र कहता है कि - माता ही सर्व प्रथम शिशुको मनुष्यके रूपमें परिणत करनेवाली है। शिक्षा और संस्कारोंका जन्म भी माताके द्वारा ही होता है। इसलिए माताका गौरव महान् बताया गया है।

अब आप विचार करें कि - संसारमें शिक्षा कितनी महत्वपूर्ण वस्तु है। शिक्षा ही मनुष्योंको परमपद तक पहुँचा देती है। शिक्षासे ही मनुष्य मनुष्य कहलाने योग्य बनता है। माताके शिक्षणके अतिरिक्त पिता, गुरुजन और लोकसे भी जीवन पर्यन्त मनुष्य शिक्षा लिया करता है। यही कारण है कि मनुष्य लोकमें पिता, गुरु और वृद्धपुरुषोंका ऋणी रहता है।

जिस प्रकार लोकमें शिक्षा ही मनुष्यके जीवनको आदर्शमय बनाती है, उसी प्रकार परलोकके लिए पारलौकिक शिक्षाकी आवश्यकता होती है। विश्वमें जितनी भी आवश्यक विषय हैं उपयोगी कार्य हैं, उन सबको सम्पादन करनेके लिए उन उन विषयोंके विशेषज्ञोंसे शिक्षा लिए बिना मनुष्य उन विषयोंका सम्यक्ज्ञाता नहीं बन पाता। उसी प्रकार पारलौकिक आत्मत्त्व ब्रह्म तत्त्व अथवा अध्यात्म विषयके साथ सम्बन्ध रखने वाले तत्त्वोंका उच्चकोटिके सद्गुरुसे जब तक अध्ययन नहीं किया जाता तब तक उनकी प्राप्ति भी नहीं हो पाती। इसलिए शास्त्रोंमें लिखा है,

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
तद्विज्ञानार्थंस गुरुमेवाधिगच्छेत् श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥

इत्यादि विविध वचनोंके द्वारा निश्चय होता है कि पारलौकिक शिक्षाके लिए किसी ब्रह्म निष्ठ सद्गुरुकी शरणमें जाना चाहिए और उस गुरुकी सेवामें रहकर विनीतभावसे ब्रह्मतत्त्वका अध्ययन करे तो उसे पारलौकिक शिक्षा प्राप्त होती है। इस प्रकारसे लोक और परलोककी शिक्षाको प्राप्त कर

मनुष्य उत्तम शिक्षा सम्पन्न माना जाता है । बल्कि परलोककी शिक्षा ही मनुष्यको शिक्षाका फल दिया करती है । लौकिक शिक्षाका फल तो नश्वर और अल्पकाल तक ही रहता है अर्थात् मृत्युके बाद लोककी शिक्षाके सब काम समाप्त हो जाते हैं परन्तु पारलौकिक शिक्षा तो इस जीवात्माके साथ संस्कार बनकरके करोड़ों वर्ष पर्यन्त रहनेवाले स्थायी सुख प्रदान करती है । इतना ही नहीं बल्कि सदाके लिए आवागमन - जन्म मरणके चक्करसे मुक्त कर ब्रह्मधामके अखण्ड सुखमें पहुँचाकर अमर सुख प्रदान कर देती है । इसी कारण महापुरुषोंने जन्म-मरणके बन्धनसे छुड़ाने वाली शिक्षाको ही मनुष्य शिक्षा माना है ।

गुरु हैं न वे नहीं बन्धु हैं वे, पिता न माता पति भी न नर ते ।
नहीं देवत्व है उस देवतामें, न मृत्यु से जो हैं पार करते ॥

जिस गुरुकी शिक्षा मृत्युसे पार न कर सके वह गुरु भी गुरु कहलाने योग्य नहीं । जो बन्धु बांधने भरका ही बन्धु है, उसे सच्चा बन्धु नहीं कहा जा सकता । प्रभुके साथ प्रेम-डोरी बांधकर भवपार करानेवाला ही सच्चा बन्धु हो सकता है । केवल मान सम्मान करनेसे माताका मातृपद सार्थक नहीं होता किन्तु परमात्माके स्वरूपका माप बताकर उसे प्राप्त करानेवाली माता ही माता कही जाने योग्य है । पिता और पति केवल लौकिक रक्षा करनेके कारण सच्चे रक्षक नहीं हो सकते । किन्तु चौरासी लाख योनिके संकटसे बचाकर सदाके लिए स्थायी सुखको प्राप्त करा दें तभी वे पिता और पति कहे जाने योग्य हैं ।

यह है हमारी आदर्श गौरव कि - लोक परलोकमें कहीं भी दुःखका सामना न करना पड़े । हमारी शिक्षाका अर्थ होता है लोक परलोकके सुखों पर अधिकार जमा लेना । हमारी उत्तम शिक्षा हमें दीन-हीन नहीं बनाती, हमें दुःख दारिद्र्यका पाठ नहीं पढ़ाती है । अत एव लिखा है,

सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी ।

हम शिक्षित होकर न मुक्तिके लिए तरसते हैं और नहीं भुक्तिके लिए । बल्कि भोग और मोक्ष दोनों पर अधिकार जमा लेना हमारी शिक्षाका दृष्टिकोण रहा है । लौकिक विषयमें भी हम,

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद्धन-माप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम् ॥

हम विद्याके इतने उपासक रहे कि कभी किसीके मुखकी तरफ नहीं ताकना पड़ा । बड़े बड़े राजा–महाराजा हमारी शिक्षाके सामने नतमस्तक होते थे । मनुष्य तो क्या देवता भी लज्जित हो जाते थे ।

महर्षिवर पुन देवऋषि और राजऋषि कहला गये ।
ध्रुव पद अचलपद देख जिनका देव भी दहला गये ॥

यह था हमारी शिक्षाका गौरव, यह था हमारे शिक्षणका उत्थान । यह थी हमारी शिक्षा–दीक्षा की धाक, जिसे सुनकर देवता स्वर्ग छोड़कर भाग जाते थे । हमारी शिक्षा हमें सब कुछ बना सकती है । हम शिक्षासे सब कुछ पा सकते हैं । जिस प्रकार पृथ्विमें सब रस विद्यमान हैं परन्तु उन्हें उगाने पर ही पा सकते हैं । बस, उसी प्रकार मानव शरीरमें भी अनेक गुण विद्यमान हैं । अनेक भावनाओंसे ओतप्रोत यह मानव देह अमूल्य रत्न है । परन्तु उन गुणोंको प्रत्यक्ष करनेके लिए उसी प्रकारके शिक्षणकी आवश्यकता है । हम चाहे जिस गुणको अपने अन्दरसे ही प्रगट कर सकते हैं । परन्तु उसके लिए हमें, शिक्षाकी शरण लेनी होगी । शिक्षा–दीक्षासे मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर सकता है । भौतिक–आत्मिक चाहे जिसके ज्ञानको भी प्राप्त कर सकता है । भारतीय शिक्षणका ब्रह्मज्ञान किंवा अध्यात्म तत्त्वका ज्ञान भी एक प्रधान अंग रहा है । आज भी उसकी उतनी ही आवश्यकता है । शिक्षाके प्रकाशकका नाम संस्कार है, जिसे सबने उत्तम माना है । इसलिए शिक्षा ही मानवका जीवन है । इस सूत्रको नहीं भूलना ।

शिक्षा - विहीनः पशुः

✻ ✻

बिगड़ जाता है..........अनुचित आहारसे पेट बिगड़ जाता है, आलस्यसे दिन बिगड़ जाता है, मुर्ख पुत्रसे कुल बिगड़ जाता है, लोलुपतासे नीयत बिगड़ जाती है, अनियमिततासे स्वास्थ्य बिगड़ जाता है, आवश्यकतासे अधिक धन हो तो बुद्धि बिगड़ जाती है और यदि निज कर्तव्योंका पालन न किया जाए तो पूरा जीवन ही बिगड़ जाता है ।

अनमोल श्लोक

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥

जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रको त्यागकर नयें वस्त्र धारण करता है, इसी प्रकार जीव भी यह नश्वर शरीररूपी वस्त्रको बदलता रहता है। नयें शरीर धारण कर लेता है तो जो इस शरीरको ही मैं अथवा स्वयं मानकर बैठा है वह जीवके द्वारा वस्त्र बदलनेकी क्रियाको ही अपना मौत मानता है किन्तु जो इस शरीररूपी वस्त्रको अपनेसे सहसा अलग मानता है, उसको शरीर बदलते न हर्ष होता है न शोक। जो ऐसा विचार करता है कि मृत्यु इस शरीरकी होती है, मेरी नहीं, मैं तो अमर हूँ अविनाशी हूँ, नित्य हूँ, शाश्वत हूँ मेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा। इस प्रकारकी आत्मिक दृष्टि प्राप्त करनेका नाम ही जीवन है। उसने सही जीवनको पा लिया। उसकी कभी मौत नहीं हुई। मौत तो उसकी होती है जो पैदा हुआ करता है। तो विचार करें कि क्या आत्मा कभी कहींसे पैदा हुई है, नहीं ! आत्मा न कभी पैदा होती है न कभी मरती है।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

आत्मा किसी कालमें भी न तो जन्म लेती है और न मरती है, न कभी उत्पन्न होकर नाश होनेवाली है। यह तो अजन्मा है, नित्य है सनातन है और पुरातन है। शरीरके मारे जाने पर भी यह नहीं मारी जाती।

जिस मृत्युसे हम भय खाते हैं, क्या हमने कभी उसे देखा है ? उसका स्वाद चखा है ? कभी नहीं। फिर हम क्यों भय खाते हैं ? जिस प्रकार पुराने घरको छोड़कर नयें घरमें जानेपर कोई दुःख नहीं होता है। उसी प्रकार जो पुराने शरीरको छोड़कर अपनी सारी आत्म शक्तियोंके साथ खुशी-खुशीसे नयें शरीरमें जाता है वही सुखी रहता है। वही आनन्दको पाता है। उसे

मौतका भय नहीं होता । उसे मृत्युके समय कुटुम्बीजनोंका कोई मोह नहीं होता । वह समझता है कि मेरा जीवन मेरे साथ ही जा रहा है मैं किसके लिये रोऊ और किसके लिए चिल्लाउँ ।

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।
अथ चेत्त्वमहङ्कारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि ॥

(गीता १८/५८)

हे अर्जुन ! तू मुझमें निरन्तर मनवाला हो, मेरी कृपासे सब संकटोंको अनायास ही तर जायेगा और यदि अहंकारके कारण मेरे वचनोंको नहीं सुनेगा तो नष्ट हो जायेगा । इसलिये सन्त और महापुरुष बराबर कहते आ रहे हैं कि मनमें चाहे कितनी प्रकारकी चिन्ताएँ, विषाद और व्याकुलता हो और इन सबके होनेमें चाहे कितने ही कैसे भी कारण क्यों न हों, इन सबका नाश परमात्मा आश्राय ग्रहण करनेसे हो जायेगा ।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

श्री कृष्ण अर्जुनसे कहते हैं, हे भारत ! जब जब धर्म सत्य एवं अध्यात्मवादका सूर्य अस्त होने लगता है, सर्वत्र असत्य और पापका बोल बाला होता है तो मैं अपने स्वरूपका सृजन(अवतार) करता हूँ । इस प्रकार सत् पुरुषोंकी रक्षा और दुष्टजनोंका मर्दन करते हुए '**लोक हित**' हेतु मैं समय-समय पर अवतरित होता हूँ ।

एको धर्मः परं श्रेय, क्षमैका शान्तिरुत्तमा ।
विद्यैका परमा तृप्तिरहिंसैका सुखावहा ॥

केवल धर्म ही परम कल्याणकारक है, एकमात्र क्षमा ही शान्तिका सर्वश्रेष्ठ उपाय है । एक विद्या ही परम सन्तोष देनेवाली है और एकमात्र अहिंसा ही सुख देनेवाली है ।

मृत्युसे भय कैसा

राजा परीक्षितको श्रीमद्भागवत पुराण सुनाते हुए जब शुकदेवजी महाराजको छह दिन बीत गए और तक्षक(सर्प)के काटनेसे मृत्यु होनेका एक दिन शेष रह गया, तब भी राजा परीक्षितका शोक और मृत्युका भय दूर नहीं हुआ।

अपने मरनेकी घड़ी निकट आती देखकर राजाका मन क्षुब्ध हो रहा था। तब शुकदेवजी महाराजने परीक्षितको एक कथा सुनानी आरंभ की।

हे राजन ! बहुत समय पहलेकी बात है, एक राजा किसी जंगलमें शिकार खेलने गया। संयोगवश वह रास्ता भूलकर बड़े घने जंगलमें जा पहुँचा। उसे रास्ता ढूंढते-ढूंढते रात्रि पड़ गई और भारी वर्षा पड़ने लगी।

जंगलमें सिंह व्याघ्र आदि बोलने लगे। वह राजा बहुत डर गया और किसी प्रकार उस भयानक जंगलमें रात्रि बितानेकेलिए विश्रामका स्थान ढूंढने लगा। रातके समयमें अंधेरा होनेकी वजहसे उसे एक दीपक दिखाई दिया।

वहाँ पहुँचकर उसने एक गंदे बहेलिये[१] की झोंपड़ी देखी। वह बहेलिया ज्यादा चल-फिर नहीं सकता था, इसलिए झोंपड़ीमें ही एक कोनेमें उसने मल-मूत्र त्यागनेका स्थान बना रखा था। अपने खानेकेलिए जानवरोंका मांस उसने झोंपड़ीकी छत पर लटका रखा था। बड़ी गंदी, छोटी, अंधेरी और दुर्गंधयुक्त वह झोंपड़ी थी। उस झोंपड़ीको देखकर पहले तो राजा ठिठका, लेकिन पीछे उसने सिर छिपानेका कोई और आश्रय न देखकर उस बहेलियेसे अपनी झोंपड़ीमें रात भर ठहर जाने देनेकेलिए प्रार्थना की।

बहेलियेने कहा कि आश्रयके लोभी राहगीर कभी-कभी यहाँ आ भटकते हैं। मैं उन्हें ठहरा तो लेता हूँ, लेकिन दूसरे दिन जाते समय वे बहुत झंझट करते हैं।

---

१. वह व्यक्ति जो छोटे मोटे पशु पक्षियोंको पकड़ता तथा उन्हें बेचकर अपनी जीविका निर्वाह करता हो।

इस झोंपड़ीकी गंध उन्हें ऐसी भा जाती है कि फिर वे उसे छोड़ना ही नहीं चाहते और इसीमें ही रहनेकी कोशिश करते हैं एवं अपना कब्जा जमाते हैं। ऐसे झंझटमें मैं कई बार पड़ चुका हूँ। इसलिए मैं अब किसीको भी यहां नहीं ठहरने देता और आपको भी इसमें नहीं ठहरने दूंगा।

राजाने प्रतिज्ञा की, कि वह सुबह होते ही इस झोंपड़ीको अवश्य खाली कर देगा। उसका काम तो बहुत बड़ा है, यहाँ तो वह संयोगवश भटकते हुए आया है, सिर्फ एक रात्रि ही काटनी है।

बहेलियेने राजाको ठहरनेकी अनुमति दे दी।

बहेलियेने सुबह होते ही बिना कोई झंझट किए झोंपड़ी खाली कर देनेकी शर्तको फिर दोहरा दिया।

राजा रात भर एक कोनेमें पड़ा सोता रहा। सोने पर झोंपड़ीकी दुर्गंध उसकेमस्तिष्कमें ऐसी बस गई कि सुबह उठा तो वही सब परमप्रिय लगने लगा। अपने जीवनकेवास्तविक उद्देश्यको भूलकर वह वहीं निवास करनेकी बात सोचने लगा। वह बहेलियेसे अपने और ठहरनेकी प्रार्थना करने लगा।

इस पर बहेलिया भड़क गया और राजाको भला-बुरा कहने लगा। राजाको अब वह जगह छोड़ना झंझट लगने लगा और दोनोंके बीच उस स्थानको लेकर विवाद खड़ा हो गया।

कथा सुनाकर शुकदेवजी महाराजने परीक्षितसे पूछा, परीक्षित ! बताओ, उस राजाका उस स्थान पर सदा रहनेकेलिए झंझट करना उचित था ?

परीक्षितने उत्तर दिया, भगवन् ! वह कौन राजा था, उसका नाम तो बताइये ? वह राजा तो बड़ा भारी मूर्ख जान पड़ता है, जो ऐसी गंदी झोंपड़ीमें, अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर एवं अपना वास्तविक उद्देश्य भूलकर, नियत अवधिसे भी अधिक रहना चाहता है। उसकी मूर्खता पर तो मुझे आश्चर्य होता है।

''श्री शुकदेवजी महाराजने कहा,'' हे राजा परीक्षित ! वह बड़े भारी

मूर्ख तो स्वयं आप ही हैं । इस मल-मूत्रकी गठरी देह(शरीर)में जितने समय आपकी आत्माको रहना आवश्यक था, वह अवधि तो कल समाप्त हो रही है । अब आपको उस लोक जाना है, जहाँसे आप आये हैं ।

फिर भी आप झंझट फैला रहे हैं और मरना नहीं चाहते । क्या यह आपकी मूर्खता नहीं है ?

राजा परीक्षितका ज्ञान जाग पड़ा और वे बंधन मुक्तिकेलिए सहर्ष तैयार हो गए ।

सुन्दरसाथजी ! वास्तवमें यही सत्य है । जब एक जीव जन्म लेनेसे पहले अपनी माँकी कोखकेअन्दरसे प्रार्थना करता है कि, हे परमात्मा ! मुझे यहाँ(इस कोख)से मुक्त कीजिए, मैं आपका भजन-सुमिरन करूँगा । जब वह जन्म लेकर इस संसारमें आता है तो (उस राजाकी तरह हैरान होकर) सोचने लगता है कि मैं ये कहाँ आ गया (और पैदा होते ही रोने लगता है) । फिर उस गंधसे भरी झोंपड़ीकी तरह उसे यहाँकी खुशबू ऐसी भा जाती है कि वह अपना वास्तविक उद्देश्य भूलकर यहाँसे जाना ही नहीं चाहता ।

अतः संसारमें आनेका वास्तविक उद्देश्वको जानें और अपने आत्माको पहचानें । परमात्माका अनुभव जीते जी हो सके ऐसा प्रयत्न करने पर आपको मृत्युका भय नहीं सताएगा ।

जीव और ब्रह्मात्माओकी मृत्युमें भी फरक है,

मर मर सब कोई जात हैं, चाहिए मोमिनों मौत फरक ।
दुनियां बीच गफलत के, मोमिन जागे दिल अरस हक ॥

श्री कयामतनामा (छोटा)

नश्वर जगतमें सभी जीव नश्वर शरीरको छोड़कर मृत्युको प्राप्त होते हैं किन्तु ब्रह्मात्माओंका शरीर छोड़ना उनसे भिन्न होना चाहिए । नश्वर जगतके जीव शरीरको छोड़कर भी शून्य निराकारमें भ्रमित होते हैं किन्तु ब्रह्मात्माएँ परब्रह्म परमात्माके चरणोंमें स्थित आत्मामें जागृत होती हैं ।

संकलन - योगेन्द्र उप्रेति

होलीके अवसर पर श्री ५ नवतनपुरी धाममें श्री १०८ राज भोगका आयोजन किया गया उसके दर्शन एवं प्रसाद लेते हुए सुन्दरसाथजी

जामनगर महानगर पालिकाके मेयर, उपमेयर स्टेंडिंग कमिटिके चेयरमैन आदि पूज्य महाराज श्रीके आशीर्वाद लेने पधारे उस समय की फोटो ।

RNI NO. GUJBIL/2006/18311, Postal Reg.No.Jam/GJN-1/2020-21
Validity : Upto 31-12-2023, Date of Publication : 10th of Every Month, Date of Posting : 16th of Every Month
Subscription : Annual Rs.150/-, 15 Years Rs.1500/-, No. of Pages : 36

हर्षदपुरमें श्री ५ नवतनपुरी धाम की ओर से रक्तदान केम्प सम्पन्न

प्रणामी ग्लोबल स्कूलमें कोरोना वेक्सीनेशनका कार्यक्रम
(दिनांक - ०८/०४/२०२१)